श्रीकांत

शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

उपन्यास

श्रीकांत

शरतचंद्र चट्टोपाध्याय

श्रीकांत

अध्याय 1

मेरी सारी जिन्दगी घूमने में ही बीती है। इस घुमक्कड़ जीवन के तीसरे पहर में खड़े होकर, उसके एक अध्यापक को सुनाते हुए, आज मुझे न जाने कितनी बातें याद आ रही हैं। यों घूमते-फिरते ही तो मैं बच्चे से बूढ़ा हुआ हूँ। अपने-पराए सभी के मुँह से अपने सम्बन्ध में केवल 'छि:-छि:' सुनते-सुनते मैं अपनी जिन्दगी को एक बड़ी भारी 'छि:-छि:' के सिवाय और कुछ भी नहीं समझ सका। किन्तु बहुत काल के बाद जब आज मैं कुछ याद और कुछ भूली हुई कहानी की माला गूँथने बैठा हूँ और सोचता हूँ कि जीवन के उस प्रभात में ही क्यों उस सुदीर्घ 'छि:-छि:' की भूमिका अंकित हो गयी थी, तब हठात् यह सन्देह होने लगता है कि सब लोग इस 'छि: छि:' को जितनी बड़ी बनाकर देखते थे उतनी बड़ी शायद वह नहीं थी। जान पड़ता है, भगवान जिसे अपनी सृष्टि के ठीक बीच में जबरन धकेल देते हैं शायद उसे भला लड़का कहलाकर एग्जाम पास करने की सुविधा नहीं देते; और न वे उसे गाड़ी-घोड़े पालकी पर लाव-लश्कर के साथ भ्रमण करके 'कहानी' नाम देकर छपाने की ही अभिरुचि देते हैं। उसे बुद्धि तो शायद, वे कुछ दे देते हैं, परन्तु दुनियादार लोग उसे 'सु-बुद्धि' नहीं कहते। इसी कारण उसकी प्रवृत्ति ऐसी असंगत, ऐसी निराली होती है, और उसके देखने की चीजें, और जानने की तृष्णा, स्वभावत: ऐसी बेजोड़ होती हैं कि यदि उसका वर्णन किया जाए तो, शायद, 'सु-बुद्धि' वाले हँसते-हँसते मर जाँय। उसके बाद वह मन्द बालक; न जाने किस तरह, अनादर और अवहेलना के कारण, बुरों के आकर्षण से और भी बुरा होकर, धक्के और ठोकरें खाता हुआ, अज्ञात-रूप से अन्त में किसी दिन अपयश की झोली कन्धों पर रखकर कहीं चल देता है, और बहुत समय तक उसका कोई पता नहीं लगता।

अतएव इन सब बातों को रहने देता हूँ। जो कुछ कहने बैठा हूँ वही कहता हूँ। परन्तु कहने से ही तो कहना नहीं हो जाता। भ्रमण करना एक बात है और उसका वर्णन करना दूसरी बात। जिसके भी दो पैर हैं, वह भ्रमण कर सकता है किन्तु दो हाथ होने से ही तो किसी से लिखा नहीं जा सकता। लिखना तो बड़ा कठिन है। सिवाय इसके, बड़ी भारी मुश्किल यह है कि भगवान ने मेरे भीतर कल्पना-कवित्व की एक बूँद भी नहीं डाली। इन अभागिनी आँखों से जो कुछ दीखता है, ठीक वही देखता हूँ। वृक्ष को ठीक वृक्ष ही देखता हूँ और पहाड़-पर्वतों को पहाड़-पर्वत। जल की ओर देखने से वह जल के सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता। आकाश में बादलों की तरफ आँखें फाड़कर देखते-देखते मेरी गर्दन अवश्य दु:खने लगी है, बादल बादल ही नजर आए हैं, उनमें किसी की निबिड़ केश-राशि तो क्या दीखेगी, कभी बाल का टुकड़ा भी खोजे नहीं मिला। चन्द्रमा की ओर देखते-देखते आँखें पथरा गयी हैं; परन्तु उसमें भी कभी किसी का मुख-उख नजर न आया। इस प्रकार भगवान ने ही जिसकी विडम्बना की हो उसके द्वारा कवित्व-सृष्टि कैसे हो सकती है? यदि हो सकती है तो केवल यही कि वह सच-सच बात सीधी तरह से कह दे। इसलिए मैं यही करूँगा। किन्तु मैं घुमक्कड़ क्यों हो गया, यह बताने के पहले उस व्यक्ति का कुछ परिचय देना आवश्यक है जिसने जीवन के प्रभात में ही मुझे इस नशे में मत्त कर दिया था। उसका नाम था इन्द्रनाथ। हम दोनों का प्रथम परिचय एक फुटबाल-मैच में हुआ। जानता नहीं कि वह आज जीवित है या नहीं। क्योंकि, बरसों पहले एक दिन वह बड़े सुबह उठकर, घर-बार, जमीन-जायदाद और अपने कुटुम्ब को छोड़कर केवल एक धोती लेकर चला गया और फिर लौटकर नहीं आया। ओह, वह दिन आज किस तरह याद है।

स्कूल के मैदान में बंगाली और मुसलमान छात्रों में फुटबाल-मैच था। संध्याख हो रही थी। मगन होकर देख रहा था। आनन्द की सीमा न थी। हठात्-अरे यह क्या! तड़ातड़-तड़ातड़ शब्द और 'मारो साले को, पकड़ो साले को' की पुकार मच गयी। मैं विह्वल-सा हो गया। दो-तीन मिनट,- बस इतने में कहाँ कौन गायब हो गया, निश्चय ही न कर पाया।

ठीक तौर से पता लगा तब, जब कि मेरी पीठ पर आकर एक छतरी का पूरा बेंट तड़ाक से टूट गया तथा और भी दो-तीन बेंट सिर और भी दो-तीन बेंट सिर और पीठ पर पड़ने को उद्यत दीखे। देखा, पाँच-सात मुसलमान छोकरों ने मेरे चारों ओर व्यूह-रचना कर ली है और भाग जाने को जरा-सा भी रास्ता नहीं छोड़ा है। और भी एक बेंट,- और भी एक। ठीक इसी समय जो मनुष्य बिजली के वेग से उस व्यूह को भेदता हुआ मेरे आगे आकर खड़ा हो गया, वह था इन्द्रनाथ। रंग उसका काला था। नाक वंशी के समान, कपाल प्रशस्त और सुडौल, मुख पर दो-चार चेचक के दाग। ऊँचाई मेरे बराबर ही थी, किन्तु उम्र मुझसे कुछ अधिक थी। कहने लगा, "कोई डर नहीं है, तुम मेरे पीछे-पीछे बाहर निकल आओ।"

उस लड़के की छाती में जो साहस और करुणा थी, वह दुर्लभ होते हुए भी शायद असाधारण नहीं थी। परन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि उसके दोनों हाथ असाधारण थे। यही नहीं कि वे बहुत बलिष्ठ थे, वरन् लम्बाई में भी घुटनों तक पहुँचते थे। सिवाय इसके, उसे एक सुविधा यह भी थी कि जो उसे जानता नहीं था उसके मन में यह आशंका भी न हो सकती थी कि विवाद के समय यह भला आदमी अकस्मात् अपना तीन हाथ लम्बा हाथ बाहर निकालकर मेरी नाक पर एकाएक इस अन्दाज का घूँसा मार सकेगा। वह घूँसा क्या था, उसे बाघ का पंजा कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

दो ही मिनट के भीतर मैं उसकी पीठ से सटा हुआ बाहर आ गया; और तब, इन्द्र ने बिना किसी आडम्बर के कहा, "भागो।"

भागना शुरू करके मैंने पूछा, "और तुम?" उसने रूखाई से जवाब दिया, "अरे तू तो भाग-गधे कहीं के।"

गधा होऊँ- या चाहे जो होऊँ, मुझे खूब याद है, मैंने हठात् लौटकर और खड़े होकर कहा, "नहीं, मैं नहीं भागूँगा।"

बचपन में मार-पीट किसने न की होगी? किन्तु, मैं था गाँव का लड़का- दो-तीन महीने पहले ही लिखने-पढ़ने के लिए शहर में बुआजी के यहाँ आया था। इसके पहले, इस

प्रकार दल बाँधकर, न तो मैंने मार-पीट ही की थी, और न किसी दिन इस तरह दो पूरे छतरी के बेंट ही मेरी पीठ के ऊपर टूटे थे। फिर भी मैं अकेला भाग न सका। इन्द्र ने एक बार मेरे मुँह की ओर देखकर कहा, "नहीं भागेगा, तो क्या खड़े-खड़े मार खाएगा? देख, उस तरफ से वे लोग आ रहे हैं-अच्छा, तो चल, खूब कसकर दौड़ें।" यह काम तो मैं खूब कर सकता था। दौड़ते-दौड़ते जब हम लोग बड़ी सड़क पर पहुँचे, तब शाम हो गयी थी। दुकानों में रोशनी हो गयी थी और रास्ते पर म्युनिसिपल के केरॉसिन के लैम्प, लोहे के खम्भों पर, एक यहाँ और दूसरा वहाँ, जल रहे थे। आँखों में जोर होने पर, ऐसा नहीं है कि एक के पास खड़े होने पर दूसरा दिखाई न पड़ता। आततायियों की अब कोई आशंका नहीं थी। इन्द्र अत्यन्त स्वाभाविक सहज स्वर से बात कर रहा था। मेरा गला सूख रहा था, परन्तु आश्चर्य है कि इन्द्र रत्ती-भर भी नहीं हाँफा था। मानो कुछ हुआ ही न हो- न मारा हो, न मार खाई हो और न दौड़ा ही हो। जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे भाव से उसने पूछा, "तेरा नाम क्या है रे?"

" श्रीकांत।"

"श्रीकांत? अच्छा।" कहकर उसने अपनी जेब से मुट्ठी-भर सूखी पत्ती बाहर निकाली। उसमें से कुछ तो उसने खा ली और कुछ मेरे हाथ में देकर कहा, "आज खूब ठोका सालों को, ले खा।"

"क्या है यह?"

"बूटी।"

मैंने अत्यन्त विस्मित होकर कहा, "भाँग? यह तो मैं नहीं खाता।" उसने मुझसे भी अधिक विस्मित होकर कहा, "खाता नहीं? कहाँ का गधा है रे। खूब नशा होगा- खा, चबाकर लील जा।"

नशे की चीज का मजा उस समय ज्ञात नहीं था; इसलिए सिर हिलाकर मैंने उसे वापस कर दिया। वह उसे भी चबाकर निगल गया।

"अच्छा, तो फिर सिगरेट पी।" यह कहकर उसने जेब से दो सिगरेट और दियासलाई

बाहर निकाली। एक तो उसने मेरे हाथ में दे दी और दूसरी अपने हाथ में रखी। इसके बाद, वह अपनी दोनों हथेलियों को एक विचित्र प्रकार से जुटाकर, उस सिगरेट को चिलम बनाकर जोर से खींचने लगा। बाप रे,- कैसे जोर से दम खींचा कि एक ही दम में सिगरेट की आग सिरे से चलकर नीचे उतर आई! लोग चारों तरफ खड़े थे- मैं बहुत ही डर गया। मैंने डरते हुए पूछा, "पीते हुए यदि कोई देख ले तो?" "देख ले तो क्या? सभी जानते हैं।" यह कहकर स्वच्छन्दता से सिगरेट पीता हुआ वह चौराहे पर मुड़ा और मेरे मन पर एक गहरी छाप लगाकर, एक ओर को चल दिया।

आज उस दिन की बहुत-सी बातें याद आती हैं। सिर्फ इतना ही याद नहीं आता, कि उस अद्भुत बालक के प्रति, उस दिन मुझे प्रेम उत्पन्न हुआ था, अथवा यों खुले आम भाँग और तमाखू पीने के कारण, मन ही मन घृणा। इस घटना के बाद करीब एक महीना बीत गया। एक दिन रात्रि जितनी उष्ण थी उतनी ही अंधेरी। कहीं वृक्ष की एक पत्ती तक न हिलती थी। सब छत पर सोए हुए थे। बारह बज चुके थे, परन्तु किसी की भी आँखों में नींद का नाम न था। एकाएक बाँसुरी का बहुत मधुर स्वर कानों में आने लगा। साधारण 'रामप्रसादी' सुर था। कितनी ही दफे तो सुन चुका था, किन्तु बाँसुरी इस प्रकार मुग्ध कर सकती है, यह मैं न जानता था। हमारे मकान के दक्षिण-पूर्व के कोने में एक बड़ा भारी आम और कटहल का बाग था। कई हिस्सेदारों की सम्पत्ति होने के कारण कोई उसकी खोज-खबर नहीं लेता था, इसलिए पूरा बाग निबिड़ जंगल के रूप में परिणत हो गया था। गाय-बैलों के आने-जाने से उस बाग के बीच में से केवल एक पतली-सी पगडंडी बन गयी थी। ऐसा मालूम हुआ कि मानो उसी वन-पथ से बाँसुरी का सुर क्रमश: निकटवर्ती होता हुआ आ रहा है। बुआ उठकर बैठ गयीं और अपने बड़े लड़के को उद्देश्य कर बोलीं, "हाँ रे नवीन, यह बाँसुरी राय-परिवार का इन्द्र ही बजा रहा है न?" तब मैंने समझा कि इस बंसीधारी को ये सभी चीन्हते हैं। बड़े भइया ने कहा, "उस हतभागे को छोड़कर ऐसी दूसरा कौन बजायेगा और उस जंगल में ऐसा कौन है जो ढूँकेगा?"

"बोलता क्या है रे? वह क्या गुसाईं के बगीचे से आ रहा है?" बड़े भइया बोले, "हाँ।"

ऐसे भयंकर अन्धकार में उस अदूरवर्ती गहरे जंगल का खयाल करके बुआ मन ही मन सिहर उठीं और डर भरे कण्ठ से प्रश्न कर उठीं, "अच्छा, उसकी माँ भी क्या उसे नहीं रोकती? गुसाईं के बाग में तो न जाने कितने लोग साँप के काटने से मर गये हैं- उस जंगल में इतनी रात को वह लड़का आया ही क्यों?"

बड़े भइया कुछ हँसकर बोले, "इसलिए कि उस मुहल्ले से इस मुहल्ले तक आने का वही सीधा रास्ता है। जिसे भय नहीं है, प्राणों की परवाह नहीं है, वह क्यों बड़े रास्ते से चक्कर काटकर आएगा माँ? उसे तो जल्दी आने से मतलब, फिर चाहे उस रास्ते में नदी-नाले हों- चाहे साँप-बिच्छू और बाघ-भालू हों!"

"धन्य है रे लड़के, तुझे!" कहकर बुआ एक नि:श्वास डालकर चुप हो रहीं। वंशी की ध्वानि क्रमश: सुस्पष्ट होती गयीं और फिर धीरे-धीरे अस्पष्ट होती हुई दूर जाकर विलीन हो गयी।

यही था वह इन्द्रनाथ। उस दिन तो मैं यह सोचता रहा था कि क्या ही अच्छा होता, यदि इतना अधिक बल मुझमें भी होता और मैं भी इसी तरह मार-पीट कर सकता और आज रात्रि को जब तक, सो न गया, तब तक यही कामना करता रहा कि यदि किसी तरह ऐसी वंशी बजा सकता!

परन्तु उससे सद्भाव किस तरह पैदा करूँ? वह तो मुझसे बहुत ऊँचे पर है। उस समय वह स्कूल में भी न पढ़ता था। सुना था कि हेडमास्टर साहब ने अन्याय करके उसके सिर पर ज्यों ही गधे की टोपी लगाने का आयोजन किया, त्यों ही वह मर्माहत हो, अकस्मात् हेडमास्टर की पीठ पर एक धौल जमाकर, घृणा भाव से स्कूल की रेलिंग फाँदता हुआ घर भाग आया और फिर गया ही नहीं। बहुत दिनों बाद उसी के मुँह से सुना था कि वह एक न कुछ अपराध था। हिंदुस्तानी पंडितजी को क्लास के समय में ही नींद आने लगती थी, सो एक बार जब वे नींद ले रहे थे तब, उनकी गाँठ बँधी चोटी को उसने कैंची से काटकर जरा छोटा भर कर दिया था! और उससे उनकी विशेष कुछ